THE TIMES OF INDIA

Date: 09-08-25

Field Notes

Factory jobs are key to health of Indian farming

TOI Editorials

India did right by not opening its agri markets to US grains, fruit, dairy and fish. Agriculture sustains 42% of India's population and employs 46% of workers. But as it generates less than a fifth of GDP, most farmers are poor. A recent Nabard report said farming households earn ₹13,661 per month, on average, of which actual farm income is just ₹4,476. The rest is income from other work. Pitting millions of such small farmers against the output of America's highly mechanised farms would amount to throwing them under the bus. So, when Modi says, "For us, our farmers' welfare is supreme," we can't agree more.

But it's time farmer welfare moved beyond protectionism. The greatest good that govt can deliver to farmers is to free them from the yoke of subsistence farming. Only 2% of US population works in agriculture, 1% in Germany and UK, and 3% in Japan. In 1991, the number was 60% for China and 63% for India. China has brought it down to 22% – below the global average of 26% – but India is now in the league of Afghanistan (45%), N Korea (47%) and Myanmar (45%).

There's no glory in subsistence farming. Population growth has fragmented landholdings to an unviable size. From 2.28ha in 1971, average farm size came down to 0.74ha by 2021. And as TOI reported last month, input costs and inflation have risen faster than earnings from most major crops. Yet, the share of workers in agriculture has grown from 44% in 2017-18 to 46% in 2023-24. That signals a failure of industry to create jobs at the required rate of 7.9mn every year. GOI must address this problem, not for Trump's deal but to modernise India.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 09-08-25

School Should Be Cool for Any Age

ET Editorials

In a world where technology and (de) globalisation are swiftly upending even the best-laid life plans for young people, lifelong learning could well be the only dependable life jacket. In a welcome move, Delhi University introduced the Competence Enhancement Scheme (CES) that allows individuals of any age to enrol in regular university courses and earn a certificate. Envisioned under National Education Policy (NEP) 2020, the scheme started small in 2023, but is steadily gaining traction. Up to 10% of seats in each course are now open to CES learners.

Globally, of course, this is a well-established practice. The US offers a wide range of entry points for adults returning to education, with community colleges playing a central role. In Britain, the Access to Higher Education Diplomas programme is designed for adults returning to study without traditional qualifications. Sweden has long embraced education at all stages of life. Its Komvux system enables adults to re-enter secondary or higher education regardless of age, or how long they've been out of school. Brazil offers similar flexibility. Its Educação de Jovens e Adultos (EJA) programme helps adults re-engage with literacy, primary and secondary education, often as a pathway to higher studies.

These countries are at different points on the spectrum of providing lifelong learning to their citizens. But they share one growing recognition: education shouldn't be a one-shot deal. For India, this mindset is especially important now. As the silver economy grows, and tech and globalisation constantly changejob requirements, people need to reskill and upskill continuously. That means education systems must be flexible not just in what they teach, but also when they allow people to learn.

दैनिक भास्कर

Date: 09-08-25

खुलने लगी है ट्रम्प की टैरिफ नीति की पोल

संपादकीय

अमेरिका के तमाम विभागों से सामने आ रहे नए आर्थिक- औद्योगिक आंकड़े ट्रम्प की टैरिफ नीति की पोल खोल रहे हैं। ट्रम्प का वादा तो था नौकरियों, औद्योगिक पुनर्जागरण, बढ़ती विकास दर और खुशहाली से अमेरिका को फिर से महान बनाना, लेकिन उनके कार्यकाल की प्रथम छमाही में पिछले वर्ष के इसी काल के मुकाबले जीडीपी विकास दर 2.8 से घटकर 1.3% प्रतिशत रह गई। मैन्युफैक्चरिंग में जॉब्स 37 हजार कम हो गए। पिछले साल जहां हर माह 1.68 लाख लोगों को काम मिला था, पिछले तीन माह में घटकर 37 हजार रह गया है। । बेरोजगारी का यह सच ट्रम्प को पसंद नहीं आया तो आंकड़ों में फेरबदल का आरोप लगाते हुए संबंधित विभाग के मुखिया को हटा दिया। गत गुरुवार को जारी महंगाई रिपोर्ट के अनुसार कीमतें इस जून तक 2.6% बढ़ गईं, जबकि आम जनता की जेब पर 2.2% खर्च बढ़ा है। टैरिफ के कारण रोजमर्रा की आयातित वस्तुओं की कीमतें मई और जून में बढ़ गईं। अर्थशास्त्री मानते हैं कि यह एक

आर्थिक तूफान का एक संकेत है। आखिर ट्रम्प के वादों में गलती कहां थी ? दरअसल उन्होंने किसी भी सक्षम अर्थशास्त्री से पूछा होता तो पता चलता कि अमेरिका तीन दशक पहले ही मैन्युफैक्चरिंग से अपने को अलग कर चुका है और हाई-एंड सेवा क्षेत्र में चला गया है। अमेरिकी युवाओं की पगार से सस्ता तो चीन-भारत का माल होता है।

Date: 09-08-25

मतदाता-सूची से नाम हटाने में कोई पक्षपात नहीं दिखता

संजय कुमार, (प्रोफेसर व राजनीतिक टिप्पणीकार)

मतदाता-सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण को लेकर जैसी घबराहट जताई जा रही है, क्या वह गैर-जरूरी है? बिहार में पुनरीक्षण का पहला चरण ही पूरा हुआ है। आयोग द्वारा प्रकाशित मसौदा-सर्वेक्षण और कुछ विवरण कम से कम इस बात का तो संकेत देते हैं कि यह प्रक्रिया निष्पक्ष थी।

अधिक और कम नाम हटाने वाले जिलों की राजनीतिक-सामाजिक प्रोफाइल अलग नहीं है। प्रारंभिक आंकड़ों में कोई पक्षपात नहीं दिखता।चुनाव आयोग और रिपोर्टों के अनुसार 60 लाख से ज्यादा मतदाताओं के नाम हटाए गए हैं, क्योंकि मतदाता-सूची में पंजीकृत 7.8 करोड़ मतदाताओं में से 7.24 करोड़ ने गणना फॉर्म भरा था।

आयोग ने नाम हटाने के कारणों का भी उल्लेख किया है, जैसे मृत्यु हो जाना, अस्थायी या स्थायी रूप से बाहर होने के कारण पते पर न मिलना या दो अलग-अलग जगहों पर पंजीकृत होना। जिन जिलों में नाम हटाने का अनुपात अधिक रहा, वे हैं गोपालगंज, मधुबनी, पूर्वी चम्पारण, समस्तीपुर, पटना, मुजफ्फरपुर, सारण, वैशाली, गया और दरभंगा।

इसके विपरीत, जिन जिलों में नाम हटाने का अनुपात सबसे कम रहा, वे हैं शिवहर, जमुई, मुंगेर, खगरिया, बक्सर, लखीसराय, जहानाबाद, कैमूर, अरवल और शेखपुरा। इन तमाम जिलों का सामाजिक और राजनीतिक विश्लेषण वोटरों के नाम हटाने में किसी विशेष पूर्वग्रह का प्रमाण नहीं देता है।

क्या अधिक नाम हटाने वाले जिले किसी पार्टी के गढ़ हैं और कम नाम हटाने वाले जिले किसी अन्य दल के? 2020 के विधानसभा चुनाव नतीजों का विश्लेषण ऐसी किसी बात का संकेत नहीं देता। सबसे अधिक नाम हटाने वाले दस जिलों में 2020 के चुनाव के दौरान 57.4% मतदान हुआ, जबकि सबसे कम नाम हटाने वाले दस जिलों में 57.1%।

शेष में मतदान 57.6% रहा। सबसे ज्यादा नाम हटाने वाले जिलों में एनडीए को 38.9% और सबसे कम नाम हटाने वालों में 31.7% वोट मिले। बाकी में 37.2% मिले। इसी तरह, सबसे ज्यादा नाम हटाने वाले जिलों में महागठबंधन को 37.6% और सबसे कम नाम हटाने वालों में 35.5% वोट मिले। बाकी में 37.4% मिले।पुनरीक्षण प्रक्रिया की यह कहकर आलोचना की जा रही है कि नाम हटाने में पक्षपात हो सकता है।

आशंकाएं थीं कि यह प्रक्रिया हाशिए पर पड़े समुदायों, विशेष रूप से मुसलमानों, दलितों और अन्य अल्पसंख्यक जाति समूहों के मतदाताओं के नाम हटा सकती है। हालांकि हमें यह तब तक पता नहीं चलेगा, जब तक उन सभी के नामों की

सूची न हो, जिनके नाम हटाए गए हैं। लेकिन जिलों की सामाजिक संरचना के विश्लेषण से भी टारगेटेड रूप से नाम हटाने का सबूत नहीं दिखता।

जिन जिलों में सबसे ज्यादा मतदाता हटाए गए हैं, वहां के आंकड़ों में विभिन्न समुदायों का प्रतिनिधित्व है। कुछ जिलों में मुसलमान व दलित वोटर महत्वपूर्ण अनुपात में दिखाई देते हैं, वहीं कुछ अन्य में सवर्ण, यादव और शहरी आबादी। नाम हटाने की प्रक्रिया के किसी एक समूह तक सीमित होने की सम्भावना नहीं दिखती।

पटना, गया, दरभंगा, मुजफ्फरपुर और समस्तीपुर जैसे जिलों में- जहां सबसे ज्यादा नाम मतदाता-सूची से हटाए गए हैं- सामाजिक प्रोफाइल मिली-जुली है। पटना में जहां दलितों की संख्या 16% है, वहीं शहरी मतदाताओं की संख्या 43% और सवर्णों की संख्या 21% है।

गया में दलितों की संख्या 30% और यादवों की 20% है। मुसलमानों की संख्या सिर्फ 11% है। दरभंगा में भी- जहां नाम हटाने की संख्या अपेक्षाकृत ज्यादा है- मुसलमानों (22%) और दलितों (16%) के अलावा 19% सवर्ण मतदाता हैं।

हालांकि हमें उन लोगों की जाति का पता नहीं चलेगा, जिनके नाम हटाए गए हैं, लेकिन जिले की सामाजिक प्रोफाइल का प्रारंभिक विश्लेषण इस तर्क को जरूर कमजोर करता है कि हाशिए के समूहों को टारगेट किया जा रहा है।इसी प्रकार, यदि सारण, वैशाली और गया जैसे जिलों में यादवों की बड़ी आबादी (20% या उससे अधिक) है और उनमें बहुत वोटरों के नाम काटे गए हैं, तो जहानाबाद, जमुई, मधेपुरा, बांका या भोजपुर जैसे जिले भी हैं, जिनमें अधिक यादव वोटर होने के बावजूद बहुत कम नाम काटे गए।

वहीं सारण, मुजफ्फरपुर या दरभंगा जैसे जिलों में सवर्ण आबादी अधिक होने के बावजूद बहुत वोटरों के नाम कटे हैं। यह बात भी सामने आ रही है कि जिन जिलों में अधिक नाम काटे गए हैं, वे अपेक्षाकृत गरीब जिले हैं। क्या इन जिलों से बिहार से लोगों के पलायन का कोई पैटर्न है?

अररिया (43%), किशनगंज (68%), पूर्णिया (38%), कटिहार (44%) में मुस्लिम आबादी बहुत है, लेकिन इन जिलों से वोटरों के नाम हटाने की संख्या बहुत कम है। आरोप सही होते तो इनमें नाम हटाने का प्रतिशत भी अधिक होता।

दैनिक जागरण

Date: 09-08-25

खतरनाक पड़ोसी है बांग्लादेश

प्रकाश सिंह, (लेखक सीमा सुरक्षा बल एवं उत्तर प्रदेश पुलिस के महानिदेशक रहे हैं)

आज से करीब एक वर्ष पहले पांच अगस्त, 2024 को बांग्लादेश में तत्कालीन प्रधानमंत्री शेख हसीना का तख्ता पलटा गया। छात्र आंदोलन की आंधी में शेख हसीना भाग कर भारत की शरण में आ गईं और अमेरिका के प्रभाव से बांग्लादेश

में मोहम्मद यूनुस के नेतृत्व में एक अंतरिम सरकार का गठन हुआ। जबरन सत्ता परिवर्तन में जमाते इस्लामी, बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी, हिजबुत तहरीर, हिफाजते इस्लाम जैसे इस्लामिक संगठनों का भी हाथ रहा।

यूनुस सरकार ने जमाते इस्लामी और उसके छात्र संगठन इस्लामी छात्र शिविर पर लगे प्रतिबंध हटा लिए और अवामी लीग को प्रतिबंधित कर दिया गया। जेल में बंद हजारों जिहादियों को छोड़ दिया गया। कई शहरों में 'इस्लामिक स्टेट' के झंडे फहराने लगे। अलकायदा से जुड़े अंसारुल्लाह के प्रमुख मुफ्ती जसीमुद्दीन रहमानी के विरुद्ध सारे आरोप वापस ले लिए गए। रहमानी ने एक वायरल हुए वीडियो में पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी का आवाहन किया कि वे मोदी के शासन से बंगाल को मुक्त कर अपनी स्वतंत्रता घोषित करें। एक कट्टरपंथी नेता सैयद मोहम्मद करीम ने बांग्लादेश में शरिया लागू करने की मांग करते हुए कहा कि देश में तालिबान जैसी हुकूमत होनी चाहिए।

जब 26 सितंबर, 2024 को मोहम्मद यूनुस संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेंबली में शामिल होने के लिए अमेरिका गए थे, तब उनके सम्मान में क्लिंटन ग्लोबल इनिशिएटिव ने एक समारोह का आयोजन किया था। इसमें बिल क्लिंटन ने हिजबुत तहरीर के नेता महफूज आलम की बांग्लादेश में आंदोलन चलाने के लिए मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। हिजबूत एक कट्टर इस्लामी संगठन है, जो संसार भर में खलीफा का साम्राज्य चाहता है। यह संगठन इंग्लैंड, अमेरिका और कई अन्य देशों में प्रतिबंधित है।

बांग्लादेश में सत्ता परिवर्तन का सबसे बड़ा दुष्परिणाम वहां के अल्पसंख्यकों, विशेष तौर से हिंदुओं को भुगतना पड़ रहा है। हत्या, अपहरण, दुष्कर्म के साथ मंदिरों को तोड़े जाने की घटनाएं आम हैं। बांग्लादेश हिंदू बुद्धिस्ट क्रिश्चियन यूनिटी काउंसिल के अनुसार अगस्त 2024 से जून 2025 के बीच अल्पसंख्यकों के विरुद्ध 2,442 हिंसात्मक घटनाएं हुईं। यूनुस सरकार को अमेरिका की डेमोक्रेटिक पार्टी और उसके प्रमुख नेता बराक ओबामा, बिल एवं हिलेरी क्लिंटन आदि का पूरा समर्थन है। इस कारण एमनेस्टी इंटरनेशनल और ह्यूमन राइट्स वाच जैसी संस्थाओं ने अल्पसंख्यकों पर अत्याचार की घटनाओं का संज्ञान नहीं लिया और कोई रिपोर्ट नहीं छापी। जिन चंद पत्रकारों ने इन घटनाओं पर अपनी आवाज उठाई, वे गिरफ्तार कर लिए गए और उनके खिलाफ फर्जी मुकदमे चलाए गए।

राइट्स एंड रिस्क एनालिसिस के अनुसार अभी तक 878 पत्रकारों को निशाना बनाया जा चुका है। बांग्लादेश में नया आतंक विरोधी कानून बनाया गया है, जिसके अंतर्गत आवामी लीग की गतिविधियों पर प्रतिबंध रहेगा। बांग्लादेश में सिक्योरिटी आर्डिनेंस भी पास किया गया है। इसका इस्तेमाल सरकार अपने विरुद्ध उठने वाली आवाज को दबाने के लिए कर रही है।

चूंकि यूनुस को योग्य अर्थशास्त्री होने के नाते नोबेल पुरस्कार मिला था, इसलिए लोगों को बहुत आशा थी कि उनके नेतृत्व में बांग्लादेश आर्थिक प्रगति करेगा, परंतु उसकी आर्थिक हालत खस्ता होती जा रही है। जो महंगाई सितंबर 2024 में 9.92 प्रतिशत थी, वह बढ़कर 10.87 प्रतिशत हो गई है। वर्ल्ड बैंक के अनुसार 2025 में बांग्लादेश की अर्थव्यवस्था मुश्किल से चार प्रतिशत की दर से बढ़ेगी। विदेश से होने वाले निवेश गिरते जा रहे। कपड़ा उद्योग, जो देश की आर्थिकी का आधार था, संकट में चल रहा है। 69 फैक्ट्रियां बंद हो गई हैं और 76,500 कर्मी बेकार हो गए हैं।

शेख हसीना के कार्यकाल में बांग्लादेश और भारत के बीच संबंधों में बराबर सुधार होता रहा। भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों के भारत विरोधी संगठनों के सदस्यों को पहले बांग्लादेश में शरण मिल जाती थी और वे असम, नगालैंड, मणिपुर आदि में हिंसात्मक कार्रवाई करते थे। यह सब शेख हसीना ने बंद कर दिया, परंतु अब मोहम्मद यूनुस के नेतृत्व वाली सरकार

का भारत से फासला धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। इसका मुख्य कारण यूनुस सरकार का कट्टरपंथियों से गठजोड़ है। कुछ समय पहले चीन, बांग्लादेश और पाकिस्तान की एक बैठक भी हुई, जिसका उद्देश्य भारत को अलग-थलग करना था। मोहम्मद यूनुस ने चीन को बांग्लादेश में अपना आर्थिक जाल फैलाने का न्योता दे दिया है। उन्होंने कहा कि भारत के सातों उत्तर-पूर्वी राज्यों की समुद्र तक कोई पहुंच नहीं है। ऐसे में चीन को बांग्लादेश में अच्छा बाजार मिलेगा।

चुनाव को लेकर बांग्लादेश में आंतरिक मतभेद हो गए हैं। चूंकि मोहम्मद यूनुस को सत्ता का आनंद मिल रहा है, इसलिए वह अप्रैल 2026 के पहले चुनाव नहीं करना चाहते। आर्मी प्रमुख जनरल वकार ने कहा है कि चुनाव दिसंबर 2025 तक हो जाने चाहिए। इसके बाद भी अनिश्चितता बनी हुई है। वहां चुनाव के बाद जो सरकार बने भारत को उसका रवैया देखना पड़ेगा। यदि बांग्लादेश की नई सरकार भारत विरोधी रहती है तो हमें कुछ कड़े कदम उठाने पड़ेंगे। भारत में कम से कम दो करोड़ बांग्लादेशी घुसपैठिए हैं। हमें यह कहना पड़ेगा कि बांग्लादेश इन्हें या तो वापस ले या इन्हें बसाने के लिए हमें आवश्यक भूमि हस्तांतरित करे। यह भूमि हम रंगपुर डिवीजन में मांगें और यदि बांग्लादेश नहीं दे तो उसे जबरदस्ती हासिल करने के लिए कदम उठाए जाएं। अगर हम इसमें सफल हो गए तो सिलीगुड़ी गलियारा में 'चिकन नेक' की समस्या का समाधान हो जाएगा।

अगर ट्रंप ग्रीनलैंड मांग सकते हैं और चीन ताइवान पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश कर सकता है तो हम बांग्लादेश से कुछ जमीन उन्हीं के नागरिकों को बसाने के लिए मांग सकते हैं। बांग्लादेश की स्थिति चिंताजनक है। आज वहां कट्टरपंथियों का बोलबाला है। इससे अल्पसंख्यक भयभीत जिंदगी बिता रहे हैं। चीन और पाकिस्तान से बांग्लादेश की बढ़ती हुई नजदीकियां भारत के लिए एक बड़ी सामरिक चुनौती बनने जा रही हैं। भारत को चीन पाकिस्तान के साथ बांग्लादेश से भी सावधान रहना होगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 09-08-25

ई कॉमर्स और खुदरा के बीच सह अस्तित्व

लवीश भंडारी, (लेखक सीएसईपी रिसर्च फाउंडेशन के प्रमुख हैं। लेख में उनके व्यक्तिगत विचार हैं।)

खुदरा कारोबार की प्रकृति बदल रही है और भारत निस्संदेह वैश्विक स्तर पर इस बदलाव का अगुआ है। यह स्पष्ट है कि भारतीय उपभोक्ताओं ने ई-कॉमर्स को बहुत बड़े पैमाने पर अपनाया है। उदाहरण के लिए मेरे घर पूरी तरह ऑनलाइन ऑर्डर किए जा रहे हैं। यहां तक कि मेरी घरेलू सहायिका भी यही कर रही है। यही नहीं कई रिपोर्ट के अनुसार, मझोले और छोटे शहर, कस्बे और ग्रामीण भारत भी ऑनलाइन खरीदारी में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। इसमें दो राय नहीं कि यूनिफाइड पेमेंट इंटरफेस यानी

यूपीआई, आधार और डिजिटल अधोसंरचना के अन्य घटकों ने इस वृद्धि में मदद की है। अच्छी गुणवत्ता वाली डिजिटल अधोसंरचना तक आसान पहुंच ने भी स्टार्टअप और छोटे और मझोले उपक्रमों को इस योग्य बनाया है कि वे तकनीकी क्षमता विकसित करें।

मेरे लिए अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि उत्पादों की बड़ी तादाद अब आम लोगों के लिए आसानी से उपलब्ध है। रागी बिस्किट, पारंपरिक रूप से बना घी, ताड़ का गुड़, सेमल के तकिए, कूलर के लिए खस की मैट और अनेक अन्य उत्पाद जिन्हें पूरे भारत में आसानी से नहीं पाया जा सकता था, वे सभी अब उपलब्ध हैं। हमारा खपत व्यवहार भी तेजी से बदल रहा है और इसमें कुछ साल पहले की तुलना में काफी अंतर आया है। जैसे-जैसे खपत में अंतर बढ़ रहा है वैसे-वैसे ढेर सारे छोटे उपक्रमों, समूहों या गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) के लिए भी अवसर बढ़ रहा है जो इन वस्तुओं की आपूर्ति करते हैं।

कुछ सदी पहले तक कहा जाता था कि ग्रामीण भारत में खुदरा कारोबार बहुत कम है। वहां लेनदेन और किसी चीज के बदले दूसरी चीज के आदान प्रदान की व्यवस्था थी। यहां तक कि शहरी भारत में भी ग्राहक आमतौर पर परिचित दुकानों पर ही जाते। यह रिश्ता काफी हद तक अंतरंग होता। उनके बीच बार-बार लेनदेन होता और उधारी भी। इसके चलते खुदरा कारोबारी ऐतिहासिक रूप से भारतीय ग्राहकों को उधार देने वाले रहे। असंगठित क्षेत्र भी ऐसी शानदार सेवाएं मुहैया कराता था जो आधुनिक खुदरा कारोबार नहीं मुहैया करा पाते। ये सभी व्यवहार इसलिए चलन में आए क्योंकि पारंपरिक खुदरा कारोबारी नवाचारी थे। वे भारतीय ग्राहकों के सबसे करीब थे और उनकी जरूरतों को अच्छी तरह समझते थे।

भारतीय खुदरा कारोबारी पारंपरिक रूप से कम मार्जिन में सेवाएं देते हैं, वे आसानी से उधार देते हैं और कुछ खास जरूरतों के लिए लोग उन पर निर्भर हैं। यह परिचालन बहुत मजबूत है। उदाहरण के लिए जब नोटबंदी के दौरान नकदी गायब हो गई थी तब यही मजबूत काम में आई थी। सब्जियां बेचने वालों/खुदरा कारोबारियों और ग्राहकों के बीच के भरोसे ने खानेपीने की आपूर्ति सुनिश्चित की जबकि थोक विक्रेताओं और सब्जी कारोबारियों के रिश्ते ने यह सुनिश्चित किया कि खाद्य पदार्थों की आपूर्ति प्रभावित न हो। कोई भुगतान नहीं किया जाता था। यह सब केवल मौखिक लेनदेन था क्योंकि वह उस वक्त की जरूरत थी। कोविड के दौर में भी जब वर्दी वाले पुलिसकर्मी बाकी वेंडर को रोक देते तो खुदरा कारोबारियों के इसी समूह ने सुनिश्चित किया कि विभिन्न इलाकों में खानेपीने की चीजें पहुंचती रहें। ध्यान रहे कि लॉकडाउन के दौरान खुदरा कारोबार की इजाजत थी लेकिन झुग्गियों में और शहरों के अत्यंत अंदरूनी हिस्सों में असंगठित क्षेत्र के वेंडर्स ने ही ये चीजें पहुंचाईं। यहां बात इंसानी रुचि की नहीं है बल्कि आर्थिक अनिवार्यताओं ने कम मार्जिन और कठिनाई के बावजूद कामकाज जारी रखा।

ऐसे में हमारे सामने एक दुर्भाग्यपूर्ण दुविधा के हालात हैं। बड़े गिग इकनॉमी वाले कारोबारी कम कीमतों पर वस्तुओं की एक अद्भुत श्रृंखला प्रदान करते हैं जबकि छोटे खुदरा विक्रेता हमेशा नहीं लेकिन कभी-कभी अनौपचारिक भी होते हैं। दोनों में कुछ समानताएं भी हैं। जिस प्रकार पारंपरिक खुदरा व्यापार में कुछ लोग गतिशील होते हैं और कुछ लोग एक स्थान पर स्थिर रहते हैं, उसी प्रकार ई-कॉमर्स भी ऐसे विकल्प प्रदान करता है। जिस तरह पारंपरिक खुदरा कारोबार हमेशा नवाचार करता है (घर-घर आपूर्ति) उसी तरह ई-कॉमर्स भी बदल रहा है। इसमें त्वरित व्यापार और 10 मिनट में डिलिवरी जैसे नवाचार नजर आ रहे हैं। प्रश्न यह है कि फिर इनमें अंतर क्या है?

दोनों में सबसे बड़ा अंतर यह है कि पारंपरिक खुदरा कारोबार जहां बाजार के तय ढांचे में रहकर काम करता है, जहां कई वेंडर होते हैं और कई लोग होते हैं जो जिनसे वस्तुएं ली जा सकती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस क्षेत्र में प्रवेश की राह में सीमित बाधाएं हैं। इससे उच्च स्तरीय प्रतिस्पर्धा और सीमित मार्जिन तय होते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इस तरह का खुदरा कारोबार पर्याप्त नवाचारी नहीं होता है क्योंकि इसमें कभी पर्याप्त अधिशेष नहीं तैयार होता है जो नवाचार को गति प्रदान करे। वहीं नया ई-कॉमर्स क्षेत्र चुनिंदा बड़े कारोबारियों का क्षेत्र है जो एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं और साथ ही पारंपरिक खुदरा उद्योग से भी। उनके पास कम लागत में चीजें खरीदने की क्षमता है। इसके बावजूद अधिकांश ई-कॉमर्स कंपनियां लाभ में नहीं हैं। वे घाटा उठाकर भी पारंपरिक खुदरा कारोबार को खत्म करने की रणनीति पर काम कर रही हैं। कहा जाता है कि बाद में वे कीमतें बढ़ा देंगी। अगर यह सही है तो बेहतर यही होगा कि उन पर कर ज्यादा लिया जाए या फिर नियामकीय या नीतिगत कदम उठाए जाएं। वहीं दूसरी ओर अगर ऐसा नहीं है तो फिर इस बात का अध्ययन किया जाना चाहिए कि खुदरा के इस नए स्वरूप में रोजगार, नवाचार और मूल्यों आदि को कैसे सुनिश्चित किया जाए?

अर्थशास्त्र से जुड़ी सामग्री कुछ अंतदृष्टि प्रदान करती है। पहले का संबंध प्रतिस्पर्धा के स्वरूप से है। कंपनियों के लिए उस समय उच्च लाभ हासिल करना मुश्किल होता है जब वे कीमतों को लेकर प्रतिस्पर्धा कर रही हों। ई-कॉमर्स के क्षेत्र में उच्च लाभ सुनिश्चित करने के लिए सेवाओं में विशिष्टता हासिल करना बहुत जरूरी है। दूसरा, लंबी अवधि में तभी लाभ होगा जब उस क्षेत्र में प्रवेश मुश्किल हो। चूंकि घरेलू और वैश्विक दोनों ही प्रकार की अनेक कंपनियां हैं, इसलिए इस बात का पहले ही ध्यान रखा जा चुका है - जब तक कि मौजूदा कंपनियां आपस में मिलकर विभिन्न ग्राहक या उत्पाद खंडों को आपस में बांट न लें। तीसरा, यदि वास्तव में उद्देश्य पारंपरिक खुदरा व्यापार को समाप्त करने का है तो भविष्य में छोटे खुदरा विक्रेताओं के प्रवेश को रोकना होगा। छोटे उद्यमियों की गतिशीलता को देखते हुए यह कैसे तय किया जा सकता है। प्रथम दृष्टया देखें तो उपरोक्त तीनों प्रश्नों के उत्तर स्वतः स्पष्ट हैं। लेकिन इस समीकरण में एक और प्रश्न जोड़ना आवश्यक है। नीतियां कैसे सुनिश्चित कर सकती हैं कि पारंपरिक खुदरा व्यापार नवाचार करे और समृद्ध हो? ध्यान दें कि पारंपरिक खुदरा व्यापार, चाहे वह किराना हो या अनौपचारिक क्षेत्र में, अधिशेष पैदा करता है, ग्राहकों की सेवा करता है, नवाचार करता है और निश्चित रूप से, बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन करता है। इसलिए, एक अच्छी खुदरा नीति उन्हें अधिक गतिशील बनाने में सक्षम बनाएगी। ऐसी नीतियों में संभवतः कई जाने-माने समाधान शामिल होंगे, जिनमें पर्याप्त स्थान, आसान ऋण, भ्रष्ट नगर निरीक्षकों और स्थानीय पुलिसकर्मियों से मुक्ति, और कम नियमन शामिल हैं।

लेकिन यकीनन सबसे महत्वपूर्ण नीतिगत योगदान पारंपरिक खुदरा और ई-कॉमर्स को एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करने के लिए सशक्त बनाना होगा। उदाहरण के लिए, पारंपरिक खुदरा विक्रेताओं को ई-कॉमर्स फर्मों के लिए उपलब्ध कम लागत वाले उत्पादों तक पहुंच कैसे मिल सकती है? इसी तरह, ई-कॉमर्स कंपनियों को स्थानीय खुदरा विक्रेताओं के ग्राहक ज्ञान और नेटवर्क तक पहुंच कैसे मिल सकती है? अगर यह संभव होता, तो पारंपरिक खुदरा विक्रेताओं के दीर्घकालिक भरोसेमंद संबंधों और ग्राहक ज्ञान का लाभ ई-कॉमर्स की पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं और प्रक्रिया-संचालित तरीकों का पूरक बन सकता था। हम पहले से ही ऐसे मॉडलों का परीक्षण होते देख रहे हैं। सवाल यह है कि नीतियां इनके क्रियान्वयन में कैसे मदद कर सकती हैं?